Unit-I

ज्ञान
(Knowledge)

1

ज्ञान मीमांसा अर्थ, भारतीय एवं पश्चिमी दर्शन के अनुसार ज्ञान के दार्शनिक आधार

(Epistemology—Meaning, Philosophical Basis of Knowledge According to Indian and Western Philosophy)

मीमांसा दर्शन
(Mimansa Philosophy)

मीमांसा दर्शन वेदों में पूर्ण आंस्था रखने वाला दर्शन है। वेद के दो प्रमुख भाग हैं-ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड। ज्ञानकाण्ड से सम्बन्ध रखने वाला दर्शन वेदान्त और कर्मकाण्ड से सम्बन्ध रखने वाला दर्शन मीमांसा दर्शन कहलाता है। मीमांसा दर्शन में कर्म की विशद व्याख्या हुई है, इसलिए इसे कर्मकाण्ड या कर्म मीमांसा भी कहा जाता है। मीमांसा कर्म का दर्शन है। महर्षि जैमिनी को मीमांसा दर्शन का प्रणेता माना जाता है। उनके द्वारा रचित 'मीमांसा सूत्र' इस दर्शन की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। मीमांसासूत्र पर शबर स्वामी ने एक वृहद भाष्य लिखा जो **'शाबर-भाष्य'** कहलाता है। कालान्तर में शाबर-भाष्य पर अनेक टीकायें लिखी गयीं और इस तरह मीमांसा दर्शन आगे बढ़ता गया। इसके तीन प्रमुख व्याख्याकार हुए जिनके नाम से तीन सम्प्रदाय बने। एक सम्प्रदाय के प्रणेता कुमारिलभट्ट, दूसरे सम्प्रदाय के प्रणेता प्रभाकर मिश्र और तीसरे सम्प्रदाय के प्रणेता मुरारी मिश्र थे। इन सम्प्रदायों को क्रमशः भाट्ट मत, प्रभाकर-मत और मुरारी मत कहा जाता है। हिन्दुओं के जीवन पर मीमांसा दर्शन का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। राधाकृष्णन के शब्दों में 'एक हिन्दू का जीवन वैदिक नियमों से शासित है और इसीलिए हिन्दू विधान की व्याख्या के लिए मीमांसा के नियम महत्त्वपूर्ण हैं। एस. एन. दासगुप्ता ने भी मीमांसा दर्शन के प्रभाव को इन शब्दों में व्यक्त किया है—हिन्दुओं के नित्य-प्रति के धार्मिक कृत्य, पूजा-अनुष्ठान आदि की व्यवस्था मीमांसा में की गयी है। स्मृति जो धार्मिक नियमों का संकलन है,

उसका आधार मीमांसा दर्शन ही है। ब्रिटिश काल में हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में नियमन के लिए जिस नियम
और कानून का निर्माण किया गया है, वह भी इसके द्वारा निरूपित स्मृति और दर्शन के आधार पर ही हुआ है।

मीमांसा दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त
(Main Principle Mimansa Philosophy)

मीमांसा दर्शन के प्रमुख बिन्दु निम्न प्रकार हैं—

मीमांसा दर्शन की ज्ञान मीमांसा
(Epistemology of Mimansa Philosophy)

मीमांसा दर्शन में ज्ञान एक प्रकार की क्रिया है। इन्द्रिय का पदार्थ के साथ सम्बन्ध होने पर आत्मा में चेतना उत्पन्न होती है, उसे ज्ञान कहते हैं। इस दर्शन के अनुसार ज्ञान के दो प्रकार होते हैं—

(1) साक्षात या अपरोक्ष ज्ञान

(2) परोक्ष ज्ञान

प्रत्यक्ष ज्ञान ही साक्षात या अपरोक्ष ज्ञान कहलाता है—साक्षात प्रतीतिः प्रत्यक्षम्। प्रत्यक्ष ज्ञान के दो प्रकार होते हैं—

यह बिना किसी माध्यम के प्राप्त ज्ञान है।

(1) निर्विकल्पक प्रत्यक्ष ज्ञान (2) सविकल्पक प्रत्यक्ष ज्ञान

निर्विकल्पक प्रत्यक्ष ज्ञान में वस्तु के अस्तित्व का आभास मात्र होता है अर्थात् यह भान होता है कि कुछ है। इससे वस्तु का अर्थ स्पष्ट नहीं होता, जबकि सविकल्पक प्रत्यक्ष ज्ञान में वस्तु का अर्थ ज्ञात हो जाता है। सविकल्पक प्रत्यक्ष निर्विकल्पक प्रत्यक्ष की विकसित अवस्था ही है। प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए छः इन्द्रियों का आवश्यक साधन बताया गया है। छः इन्द्रियाँ हैं—आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा और मन।

परोक्ष ज्ञान किसी माध्यम से प्राप्त होता है। परोक्ष ज्ञान की प्राप्ति के लिए पांच साधन माने गये हैं जिन्हें प्रमाण कहा जाता है। ये हैं—(1) अनुमान (2) उपमान (3) शब्द (4) अर्थापत्ति और (5) अनुपलब्धि। यदि अपरोक्ष ज्ञान की भी गणना की जाए तो मीमांसा दर्शन में कुछ छः प्रमाण माने गये हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि। ज्ञानेन्द्रिय और वस्तु के सन्निकर्ष से प्राप्त ज्ञान ही प्रत्यक्ष है। मीमांसा दर्शन में प्रत्यक्ष तथा अनुमान के लक्षण एवं प्रक्रिया को सामान्य रूप से न्याय दर्शन के समान ही माना है। इस दर्शन में अनुमान की प्रक्रिया में न्याय के समान पंचावयव वाक्य न मानकर 'प्रतिज्ञा', 'हेतु' तथा दृष्टांत का अवयव माना है। मीमांसा दर्शन में उपमान का स्वरूप न्याय दर्शन से भिन्न है। इनके अनुसार सादृश्य का अन्तिम ज्ञान उपमान कहलाता है। मीमांसा दर्शन शब्द को एक स्वतन्त्र प्रमाण स्वीकार करता है। शब्द प्रमाण आप्त कथनों पर आधारित होता है। आप्त कथन के दो श्रोत हो सकते हैं—(1) कोई पुरुष और (2) कोई प्रामाणिक ग्रन्थ। मीमांसा दर्शन एकमात्र वेदों को आप्त वाक्यों का कथन करने वाला प्रमाणिक ग्रन्थ मानता है। चूँकि वैदिक आदेशों द्वारा प्राप्त बोध किसी भी काल में अथवा किसी भी अवस्था में खंडित नहीं होता, इसलिए वेद प्रामाणिक हैं। अर्थापत्ति वह प्रमाण है जिसमें किसी प्रत्यक्ष की व्याख्या के लिए किसी अन्य वस्तु (अर्थ) की कल्पना करना आवश्यक होता है जिसके अभाव में उस वस्तु की उत्पत्ति न हो। मीमांसा दर्शन में कहा गया है—अर्थापत्तिरपिदृष्ट : श्रुतोवाऽर्थोऽन्यथा नोपद्यते इत्यर्थ कल्पना—अर्थात् दृष्ट अथवा श्रुत अर्थ की सिद्धि जिसके अभाव में न होती हो, उसे अर्थापत्ति प्रमाण कहते हैं। किसी विषय के अभाव के साक्षात ज्ञान को अनुपलब्धि कहते हैं। भट्ट मीमांसक इसे एक स्वतंत्र प्रमाण के रूप में अपनाते हैं जबकि प्रभाकर मीमांसक के अनुसार अनुपलब्धि को एक स्वतंत्र प्रमाण नहीं कहा जा सकता।

मीमांसा दर्शन की तत्व मीमांसा

मीमांसा दर्शन जगत और उसके समस्त विषयों की सत्यता में विश्वास रखता है। इसके अतिरिक्त यह दर्शन आत्मा, स्वर्ग, नरक और वैदिक यज्ञों के देवताओं के अस्तित्व को भी स्वीकार करता है। मीमांसा परमाणु की सत्ता को मानता है। यह परमाणु को ईश्वर द्वारा संचालित नहीं मानता अपितु यह मानता है कि कर्म के नियम के द्वारा परमाणु गतिशील होते हैं। इन परमाणुओं के गतिशील होने से ऐसा जगत बन जाता है जहाँ जीव अपने कर्मों के अनुकूल सुख या दुख प्राप्त करते हैं। प्रभाकर ने सात प्रकार के पदार्थ बताये हैं। ये पदार्थ हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, परतन्त्रता, शक्ति और सादृश्य। कुमारिल भट्ट ने दो प्रकार के पदार्थ बताये हैं—एक भाव पदार्थ और दूसरे अभाव पदार्थ। भाव पदार्थ चार प्रकार हैं—प्रागभाव, ध्वंसाभाव, अत्यंताभाव और अन्योन्याभाव।

मीमांसा दर्शन के अनुसार हमें इस जगत में तीन प्रकार की वस्तुओं का ज्ञान होता है—एक शरीर, जिसमें रहकर आत्मा सुख-दुख का अनुभव करती है, दूसरी इन्द्रियाँ, जिनके द्वारा आत्मा सुख-दुख का भोग करती है और तीसरी पदार्थ, जिनका भोग आत्मा द्वारा किया जाता है। जैसे—कर्म होंगे वैसी ही सृष्टि की रचना होती है। यह दर्शन जगत की सृष्टि और प्रलय को नहीं मानता। इसके अनुसार व्यक्ति का जीवन जन्मता है और मरता है, जगत की सृष्टि और उसका विनाश कभी नहीं होता।

मीमांसा दर्शन में आत्मा सम्बन्धी विचार

मीमांसा दर्शन में आत्मा को कर्त्ता, भोक्ता और ज्ञाता माना गया है। इस दर्शन के अनुसार आत्मा शरीर, बुद्धि और इन्द्रियों से भिन्न है। आत्मा की उत्पत्ति और इसका विनाश नहीं है, इसलिए आत्मा नित्य है, अमर है। आत्मा स्वयं प्रकाश है। यह स्वयं प्रकाशित होती है। इसलिए इसे आत्म ज्योति कहा गया है। आत्मा चेतना का आश्रय है। चेतना आत्मा का स्वाभाविक गुण नहीं वरन् आगन्तुक गुण है। आत्मा मूलत: अचेतन है। जब आत्मा का सम्पर्क मन और इन्द्रियों से होता है तब इसमें चैतन्य उदय होता है। सुषुप्ति की अवस्था में आत्मा का संयोग मन और इन्द्रियों में नहीं रहता, इसलिए आत्मा ज्ञान से शून्य हो जाती है और चैतन्य का अभाव रहता है। मोक्षावस्था में भी आत्मा चैतन्य शून्य हो जाती है। आत्मा स्वयं अपने को जान लेती है वह गत्यात्मक होती है।

मीमांसा के अनुसार अपने धर्म और अधर्म की भिन्नता के कारण आत्मा अनेक है। आत्मा के सुख-दुख भी इसी कारण अलग-अलग हैं। भिन्न-भिन्न जीवों में भिन्न-भिन्न आत्मा होती है। यदि ऐसा नहीं होता तो सभी लोगों का दृष्टिकोण और अनुभूति एक ही होती। आत्मा के नौ विशेष गुण हैं—बुद्धि, सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार। मनस् आत्मा का अन्त: करण है। वह अणु रूप है। आत्मा को विशेष गुणों की उपलब्धि मनस् के द्वारा होती है। मनस् बाह्य कारणों के व्यापारों का भी सहायक है। आत्मा विभु है। उसका अणु रूप मनस् के संयोग होता है और तब ज्ञान की उत्पत्ति होती है।

मीमांसा दर्शन में मोक्ष सम्बन्धी विचार

मीमांसा दर्शन के प्रवर्त्तक महर्षि जैमिनी और जैमिनी सूत्र प्रसिद्ध भाष्यकार शबर स्वामी ने मोक्ष पर विचार नहीं किया था। प्राचीन मीमांसक स्वर्ग की प्राप्ति को ही जीवन का चरमलक्ष्य मानते थे। उनके अनुसार स्वर्ग कामो यजेत—जिसे स्वर्ग की इच्छा हो वह यज्ञ करें। लेकिन बाद के मीमांसकों ने अन्य दर्शनों की तरह मोक्ष को ही जीवन का चरम लक्ष्य माना और मोक्ष के स्वरूप तथा उसकी प्राप्ति के साधनों पर विचार किया।

मीमांसा के अनुसार आत्मा का अपने से भिन्न वस्तुओं से सम्बन्ध होना बन्ध है। इसमें तीन बन्धनों का निर्देश किया गया है जो आत्मा को बांधते हैं। ये तीन बन्धन हैं—भोगायतन-शरीर, भोग साधन-इन्द्रियाँ और भोग विषय-पदार्थ। आत्मा आदि काल से इन बन्धनों में पड़ी रहती है और अनेक प्रकार के दुखों को झेलती रहती है। इसे ही भव बन्धन कहा गया है। भव बन्धन के कारण ही वह पुनर्जन्म को धारण करता है और जन्म-मरण के

चक्र में पड़ा रहता है। वह अपनी इच्छाओं और वासनाओं का दमन कर लेता है और कोई ऐसा कार्य नहीं क
जिसे वह पहले सुख प्राप्ति का साधन मानता था। इस प्रकार उसे इस बन्धनों और पूनर्जन्म से छुटकारा मि
जाता है। इन्हीं सांसारिक बन्धनों से सदैव के लिए सम्बन्ध विच्छेद हो जाना मोक्ष या मुक्ति कहा जाता है। केव
आत्म ज्ञान से नहीं वरन् सही कर्म करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए कर्म ही मु
कारण है। आत्म ज्ञान केवल सहकारी कारण है। यहाँ हम कर्म और ज्ञान का समुच्चयवाद पाते हैं। मोक्ष
आत्मा सुख-दुख से परे अपने यथार्थ स्वरूप में रहती है। मोक्षावस्था आनन्दस्वरूप नहीं कही जा सकती। य
तो दुखरहित अवस्था है। यहाँ केवल सांसारिक दु:खों का पूर्ण विनाश हो जाता है। कुमारिल के अनुसार मो
समस्त दु:खों से रहित आत्मा की अपने स्वरूप में अवस्थिति है। मीमांसा के अनुसार काम्य और निषिद्ध क
बन्धन रूप हैं। काम्य कर्मों से पुण्य और निषिद्ध कर्मों से पाप उत्पन्न होता है और ये दोनों ही बन्धन के कारण
है। इनका नाश होने पर बन्धन का स्वत: ही नाश हो जायेगा। अत: काम्य और निषिद्ध कर्मों का सर्वथा परित्या
करना चाहिए किन्तु नित्य और नैमित्तिक अर्थात् वेदविहित कर्मों को करते रहना चाहिए।